गौर के पुनर्वास पर बनी फिल्म

प्रमोद भार्गव

हमारे देश में यह पहली बार संभव हुआ है कि किसी वन्य जीव का सफल पुनर्वास हुआ है, वह भी बड़ी संख्या में! और तो और इस पुनर्वास की हरेक गतिविधि का फिल्म के रूप में दस्तावेज़ीकरण किया गया है। '*टर्निंग दी क्लॉक बैकः दी बांधवगढ़ गौर*' शीर्षक से बनाई गई इस डॉक्यूमेंट्री का निर्माण व निर्देशन अनिल यादव ने किया है। अनिल मध्यप्रदेश के विदिशा ज़िले की तहसील गंज बसौदा के एक कस्बाई पत्रकार हैं। यह फिल्म बन तो 2014 में ही गई थी, लेकिन वह महत्व नहीं मिला, जो ऐसे साहसिक कार्य को मिलना चाहिए था। अलबत्ता अब ज़रूर यह चर्चा में है क्योंकि 39 मिनट की इस फिल्म को दिल्ली के अंतर्राष्ट्रीय फिल्म मेला में शामिल कर लिया गया है। इस मेले में 68 देशों की 221 फिल्में दिखाई जाएंगी। यह शायद पहला अवसर है, जब एक नितांत गैरव्यावसायिक और अंग्रेज़ी नहीं जानने वाले कस्बाई पत्रकार द्वारा वन्य प्राणी पर निर्मित फिल्म को इस आयोजन की प्रतिस्पर्धा में भागीदारी का अवसर मिला है। वैसे पूरी तरह स्थानीय स्तर पर तैयार इस फिल्म की स्क्रीनिंग इसी साल सिंतबर माह में दिल्ली में आयोजित 'वुडपैकर अंतर्राष्ट्रीय फिल्म मेला' में भी की गई थी। इसमें अनिल यादव 'वुडपैकर अचीवर एवॉर्ड' से सम्मानित किए गए थे।

वन्य-जीवों का पुनर्वास जितना जटिल व जोखिम भरा काम है, उतना ही कठिन काम प्राकृतिक रूप में अठखेलियां कर रहे किसी वन्य प्राणी पर फिल्म बनाना भी है। हमारे यहां अब तक इस काम को गैरव्यावसायिक रहते हुए रोमेश बेदी और उनके पुत्र नरेश व राजेश बेदी ने किया है। गंगा के घड़ियालों से लेकर हिमालय की शिखर गुहाओं में रहने वाले हिम चीता पर फिल्में पहले-पहल उन्होंने ही बनाई हैं। जंगल की दुनिया पर हिंदी में विपुल व रोचक लेखन रोमेश बेदी ने ही किया है। पांच खंडों में सचित्र प्रकाशित उनका 'वनस्पति कोश' एक उपयोगी ग्रंथ है।

देश में अब तक दुर्लभ वन्य प्राणियों के सरंक्षण की दृष्टि से जो भी प्रयोग हुए हैं, वे असफल ही रहे हैं। पुनर्वास के क्रम में एक बड़ी कोशिश मध्य प्रदेश के ही शिवपुरी में स्थित माधव राष्ट्रीय उद्यान में बाघों की हुई थी। 1989 में स्वर्गीय माधवराव सिंधिया के विशेष प्रयासों से उद्यान के 10 हैक्टर क्षेत्र में तारों की बाड़ लगाकर टायगर सफारी बनाई गई थी। इसमें तारा और पेटू नाम के मादा व नर बाघ छोड़े गए थे। आरंभ में तो यह प्रयोग सफल रहा, क्योंकि बाघों के लिए अनुकूल आवास, आहार व प्रजनन की प्राकृतिक सुविधाएं मिल जाने के कारण इनके वंश में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। किंतु जब बाघों की संख्या बढ़कर 13 हो गई तो वन प्रबंधन संकट में आ गया। तारा जो इस कुटुम्ब की जननी थी, नरभक्षी हो गई और उसने उद्यान में काम करने वाली दो महिलाओं का शिकार कर लिया। इन घटनाओं से अन्य बाघों के भी आदमखोर हो जाने की आशंका बढ़ गई। नतीजतन वन प्रबंधन के हाथ पैर फूल गए और सफारी के बाघ देश के चिड़ियाघरों में भेजकर इन्हें हमेशा के लिए बंद कर दिया गया।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पुनर्वास का दूसरा प्रयास सोनचिड़िया

अभयारण्य, करैरा के कृष्ण मृगों का हुआ था। इस हेतु अमेरिका के वन्य प्राणी विशेषज्ञों की देखरेख में इन काले हिरणों का पुनर्वास करैरा से शिवपुरी के माधव राष्ट्रीय उद्यान में किया जाना था। हिरणों को पकड़ने के लिए अभयारण्य क्षेत्र में अनेक तकनीकी रूप से सक्षम जाल बिछाए गए थे। लेकिन हिरणों को शायद पूर्वाभास हो गया कि ये जाल उनके जीवन के लिए संकट का सबब हैं। तीन दिन की मशक्कत के बावजूद एक सैकड़ा से भी ज़्यादा देशी-विदेशी प्राणी विशेषज्ञों का समूह एक भी हिरण नहीं पकड़ पाया। तकनीकी प्रबंध और किताबी ज्ञान धरे के धरे रह गए। हिरण जालों के समीप तक नहीं आए। पुनर्वास की इस प्रक्रिया का गवाह यह लेखक स्वयं भी रहा है। तब मैंने पत्रकार राजेश बादल के सहयोग से समाचार स्टोरी बनाई थी। जिसका प्रसारण दूरदर्शन के 'परख' प्रकरण में 'मृग प्रसंग' शीर्षक से हुआ था।

पुनर्वास की तीसरी बड़ी कोशिश राष्ट्रीय स्तर पर गिर के सिंहों को श्योपुर ज़िले के कूनो-पालपुर अभयारण्य में बसाने की चल रही है। आज़ादी के पहले इन्हीं सिंहों को इसी वन प्रांतर में बसाने की पहल ग्वालियर स्टेट के महाराजा माधोराव सिंधिया ने 1905 में की थी। तब गिर के जंगल जूनागढ़ के नवाबों के अधीन थे। उन्होंने सिंह देने से साफ इन्कार कर दिया था। दरअसल 1904 के आसपास लॉर्ड कर्जन शिवपुरी, श्योपुर व मोहना के जंगलों में सिंह व बाघ का शिकार करने आए थे। परंतु उस समय तक इन वनखंडों से सिंह पूरी तरह लुप्त हो चुके थे। लिहाज़ा कर्जन की शिकार की मंशा पूरी नहीं हो पाई थी। तब कर्जन ने ही इथोपिया के शासक को सिंह देने बाबत एक सिफारिशी पत्र लिखा, जिसे वन्य जीवन के पारसी जानकर डी.एम. जाल लेकर इथोपिया गए और वहां से जहाज़ के जरिए 10 सिंह शावक बंबई लेकर आए। हालांकि इनमें से तीन रास्ते में ही मर गए थे। बचे सात में तीन सिंह और चार सिंहनियां थीं। इनकी अगवानी के लिए स्वयं ग्वालियर महाराज बंबई पहुंचे थे।

इन शावकों का पहले ग्वालियर के चिड़ियाघर में लालन-पालन किया गया। जब ये व्यस्क हो गए तो दो मादाओं ने गर्भधारण किया और पांच शावक जने। इन सिंहों के बड़े होने के बाद इन्हें शिवपुरी व श्योपुर के जंगलों में स्वच्छंद विचरण के लिए छोड़ दिया गया। किंतु जल्दी ही ये सिंह नरभक्षी हो गए और इन्होंने दर्जन भर लोगों को मार गिराया। प्रजा में हाहाकार मचने के बाद इन्हें पकड़वा लिया गया।

अब फिर, ढाई दशक से भी ज़्यादा समय से सिंहों के पुनर्वास की कोशिश चल रही है, किंतु गुजरात सरकार सिंह नहीं दे रही है। जबकि इस परियोजना के क्रियान्वयन के चलते 22 आदिवासी ग्राम उजाड़े जा चुके हैं। करोड़ों रुपए खर्च कर दिए जाने के बावजूद सिंहों के पुनर्वास की कवायद किसी मंज़िल पर नहीं पहुंची है।

सफेद शेरों की भी अपने आदिम क्षेत्रों में पुनर्वास की कोशिश चल रही है। एक समय रीवा, सीधी एवं शडहोल के जंगलों में इनका नैसर्गिक रहवास था। 27 मई 1951 को पहली बार रीवा के महाराज गुलाब सिंह ने एक पीले रंग की काली पट्टी वाली शेरनी को चार शावकों के साथ देखा था। इनमें तीन पीले और एक सफेद शावक था। रीवा महाराज ने इस अद्भुत शावक को पकड़वा लिया। इसका नाम 'मोहन' रखा गया। व्यस्क होने पर इसका 'राधा' नाम की शेरनी के साथ संगम कराया गया। अक्टूबर 1958 में राधा ने चार सफेद शावकों को जन्म दिया। आज देश-दुनिया में जहां भी सफेद बाघ हैं वे इसी राधा-मोहन जोड़ी के वंशज हैं।

ये बाघ दुनिया में तो अपनी वंश वृद्धि करते रहे, लेकिन अपने मूल आवास स्थल सीधी ज़िले की गोपद-बनास तहसील से पूरी तरह लुप्त हो गए। अब इनके पुनर्वास की पहल युद्धस्तर पर चल रही है। जहां इन्हें फिर से आबाद किया जा रहा है, उसे मुकुंदपुर चिड़ियाघर नाम दिया गया है। यहां फिलहाल रेस्क्यू सेंटर और सफेद बाघ सफारी प्रजनन केंद्र विकसित कर दिए गए हैं, लेकिन अभी बाघों का जोड़ा आना बाकी है। यह प्रयोग गौर के पुनर्वास की तरह सफल हो जाता है तो एक बार फिर से कैमूर विंध्याचल के पर्वतों में सफेद शेर की दहाड़ गूंजने लगेगी।

अब गौर के पुनर्वास से जुड़े सफल प्रयास और इस गतिविधि पर बनी फिल्म की बात करते हैं। एक समय

मध्यप्रदेश के ही बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान में भारी-भरकम वन्य जीव गौरों की खूब आबादी थी। आठ से नौ क्विंटल वज़नी गौर गौवंशीय प्रजाति है। जंगली भैंसा, याक, वान्टेंग, मिथुन और गायल भी इसी श्रेणी में आते हैं। भारत के अलावा गौर अमेरिका और जंगली भैंसा अफ्रीका में भी पाए जाते हैं। अभी तक याक, वान्टेंग, मिथुन और गायल को तो मवेशियों की तरह पालतू बनाया जा चुका है, लेकिन गौर पूरी तरह जंगली जीव है। 1998 तक बांधवगढ़ में ये पूरी तरह विलुप्त हो गए थे। जबकि यहां अनुकूल परिवेश होने के साथ ही जंगल में चारा-पानी की कोई कमी नहीं थी।

बहरहाल यह संयोग ही था कि 2005 में दक्षिण अफ्रीका की एक बड़ी कंपनी 'एण्ड बियॉन्ड' ने भारत में कारोबार करने का निर्णय लिया। इस मकसद की पूर्ति के लिए कंपनी के प्रमुख और प्रकृति विज्ञानी सरत चंपाति ने म.प्र. के प्रधान मुख्य वन सरंक्षक (वन्य प्राणी) डॉ. एच.एस. पावला से मुलाकत की। यह कंपनी वन्य प्राणियों को पकड़ने, उनका परिवहन करने और फिर उनके पुनर्वास में दक्ष है। पावला ने पहले माधव राष्ट्रीय उद्यान में बाघों के पुनर्वास का प्रस्ताव रखा। किंतु चंपाति ने कान्हा राष्ट्रीय उद्यान से बांधवगढ़ में गौरों के पुनर्वास का सुझाव दिया। विचार-विमर्श के बाद सहमति बन गई। पावला की मंशा थी कि एक बार यदि इस विशालकाय जीव के विस्थापन व पुनर्वास की तकनीक समझ आ जाती है तो फिर अन्य जीवों का पुनर्वास अपने ही स्तर पर संभव हो सकता है। भारतीय वन्य जीव संस्थान, देहरादून ने भी इस परियोजना को स्वीकृति दे दी। परियोजना पर करीब दो करोड़ रुपए खर्च होने थे। इसमें 60 लाख रुपए का सहयोग एण्ड बियॉन्ड और ताज सफारी ने किया। शेष राशि कान्हा और बांधवगढ़ आने वाले पर्यटकों से प्राप्त आय से जुटाई गई।

विस्थापन और पुनर्वास की कार्रवाई के फिल्मांकन के लिए अखबारों में सार्वजनिक विज्ञप्ति दी गई। लेकिन दुर्लभ, अनिश्चय और लंबी कालावधि का काम होने के कारण टेंडर नहीं आए।

अंततः पावला ने अनिल यादव से संपर्क साधा। अनिल इसके पहले वन्य जीवन से सम्बंधित सात डॉक्यूमेंट्री बना चुके थे। *पारदीज़ः दी अनटोल्ड स्टोरी*, *पारदीज़ः दी अन्हर्ड स्टोरी* और गौरैया व अजगर पर बनी उनकी चर्चित डॉक्यूमेंट्री रही हैं। पहले भी उनकी फिल्में मेलों में नामांकित हुई हैं। इन फिल्मों के निर्माण की जानकारी पावला को थी। बहरहाल संवाद कायमी के बाद अनिल निशुल्क फिल्म बनाने के लिए तैयार हो गए। आखिरकार मध्यप्रदेश पारिस्थितिकी एवं पर्यटन विकास मंडल के साथ गौर के पुनर्वास पर फिल्म के निर्माण की रूपरेखा बन गई।

इस बीच कान्हा से 50 गौरों के विस्थापन व बांधवगढ़ में पुनर्वास का सिलसिला शुरू हो गया। दक्षिण अफ्रीका के विशेषज्ञों ने ट्रेंक्वीलाइज़र (निद्रादायक औषधि) के मार्फत गौर बेहोश किए। बेहोशी के लिए 19 जनवरी 2011 को अफ्रीकी दल ने जंगल के हालात को समझा और फिर अगले दिन एक मादा के पुट्ठे में डार्ट दाग कर उसे नीम-बेहोश कर दिया गया। ट्रेंक्वीलाइज़र के बाद किसी अप्रत्याशित स्थिति का सामना न करना पड़े, इसलिए सात हाथियों पर सवार विशेषज्ञों ने गौरों के समूह पर नज़र रखी। इस तरह एक-एक कर पांच गौरों को बेहोश किया गया। इन्हें प्रशिक्षित वनकर्मियों ने स्ट्रेचर पर डालकर ट्रक में लादा। इनके लिए तीन खानों वाले ट्रक तैयार किए गए थे। वनकर्मियों ने बोरों में रेत भरकर लादने का अभ्यास किया था।

कान्हा से बांधवगढ़ की दूरी करीब 200 किमी है। यहां 100 हैक्टर क्षेत्र में एक बाड़ा तैयार किया गया था। इस क्षेत्र में पानी एवं बिजली की व्यवस्था नहीं थी। लिहाज़ा सौर ऊर्जा के पैनल लगाए गए और एक नलकूप का खनन किया गया। 22 जनवरी 2011 की रात को बांधवगढ़ में गौरों की पहली खेप का सफल पुनर्वास कर दिया गया। इसके बाद 14 गौर और बांधवगढ़ लाए गए। 9 मार्च 2011 को अच्छी खबर यह आई कि एक मादा ने बछड़े को जन्म दिया है। इससे सुनिश्चित हुआ कि मादा के गर्भस्थ शिशु पर बेहोशी की दवा का असर नहीं पड़ा था। मार्च 2012 में दूसरे चरण की शुरुआत की गई, जिसके अंतर्गत 31 गौरों का पुनर्वास हुआ। इस प्रक्रिया में केवल एक गौर की अकाल मृत्यु हुई।

इन चार वर्षों के दौरान गौर की संख्या 49 से बढ़कर

121 तक पहुंच गई थी। इनमें से 19 का बाघों ने शिकार कर लिया और दो की असमय मौत हो गई। वर्तमान में बांधवगढ़ में 17 नर, 39 मादा और डेढ़ साल से कम उम्र के गौरों की संख्या 27 है। यह खुशी की बात है कि इस बाघ संरक्षित उद्यान के कलवाह, मगधी और ताला वन परिक्षेत्रों में गौर की संख्या लगातार बढ़ रही है। बांधवगढ़ में विलुप्त प्राणी गौर के इस विस्थापन और पुनर्वास की गाथा को अनिल यादव ने '*टर्निंग दी क्लॉक बैकः दी बांधवगढ़ गौर*' फिल्म में बेहद सुरुचिपूर्ण ढंग से छायांकित किया है। ***(स्रोत फीचर्स)***